**ओ३म्**

**‘वेद की आज्ञा मनुर्भव और कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**

**के आदर्श पालक महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 वेद ईश्वरीय ज्ञान है। ईश्वर प्रदत्त ज्ञान होने के कारण वेद पूर्णतः तर्क व युक्ति संगत होने के साथ विज्ञान के अनुकूल भी हैं। वेदों में **‘मनुष्य को मनुष्य बनने’** की शिक्षा है। मनुष्य का अर्थ होता है मननशील होना। क्या हम मननशील हैं? मननशील मनुष्य मनन अर्थात् सत्य व असत्य का विचार व चिन्तन करने वाले तथा सत्य को ग्रहण व उसका आचरण करने वाले को कहते हैं। संसार में मनुष्य की आकृति वाले 7 अरब से अधिक लोग हैं। विचार करने पर ज्ञात होता है कि सभी मनुष्य आकृति की दृष्टि से मनुष्य अवश्य हैं परन्तु गुण, कर्म व स्वभावानुसार सभी व्यक्ति मनुष्य नहीं हैं। मनुष्य मनन कब कर सकता है? इसके लिए आत्मा में ज्ञान का होना आवश्यक है। जो व्यक्ति ज्ञानहीन हैं, वह उस विषय जिसका उन्हें ज्ञान न हो, उसका विचार, चिन्तन अर्थात् मनन नहीं कर सकते। इसके लिए अध्ययन व स्वाध्याय की आवश्यकता होती है और स्वाध्याय के लिए सर्वोत्तम ग्रन्थ वेद और वेदानुकूल ऋषि मुनियों के बनाये हुए ग्रन्थ हैं। **समस्त वैदिक वांग्मय में में अग्रणीय व ऋषियों का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रमुख ग्रन्थ ‘सत्यार्थप्रकाश’ है।** हमारा मानना है कि यदि मनुष्य सत्यार्थप्रकाश को पढ़ ले तो उसमें धार्मिक विषयों में मनन, विचार व चिन्तन करने एवं सत्य व असत्य का निर्णय करने की क्षमता व योग्यता का विकास हो जाता है। अतः सत्यार्थप्रकाश सबके लिए आवश्यक एवं एक उत्तम ग्रन्थ है। इसे पढ़कर वेदों को पढ़ने व जानने की प्रेरणा होती है तथा यह निष्कर्ष निकलता है कि वेदों का अध्ययन, स्वाध्याय एवं पढ़ना-पढ़ाना व सुनना सुनाना ही वस्तुतः प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है। अतः वेद की शिक्षा **‘मनुर्भव’** का यह भी अर्थ है कि हम वेदों को जानें एवं उसके अनुसार आचरण कर अपना जीवन बनायें, तभी हम मनुष्य बनेंगे और तभी **‘मनुर्भव’** होने की वेदों में निहित ईश्वराज्ञा हम पर चरितार्थ होगी।

वेद की एक और आज्ञा है **‘कृण्वन्तो विश्मार्यम्’** अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अन्यों को **‘आर्य’** अर्थात् श्रेष्ठ गुण, कर्म व स्वभाव वाला बनाना है। यदि हम व अन्य कोई जो स्वयं को मनुष्य मानता है, इसका पालन नहीं करता तो वेदाज्ञा भंग करने के कारण वह नास्तिक व अनार्य ही कहा जायेगा। अतः वेद के अनुसार मनुष्य का यह भी धर्म है कि वह स्वयं आर्य अर्थात् श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव से अलंकृत व शोभित हो तथा दूसरों को भी यथाशक्ति आर्य बनाने का कार्य करे। जिस प्रकार एक प्रज्जवलित दीपक से दूसरे दीपकों को प्रज्जवलित किया जा सकता है, बुझे हुए दीपक से नहीं, उसी प्रकार से आर्य बनाने के लिए भी पहले स्वयं आर्य बनना होता है। जो स्वयं आर्य व श्रेष्ठ गुणों वाले नहीं हैं, वह दूसरों को कदापि आर्य नहीं बना सकते। विचार करने पर सभी विद्वत्जन यह भी सभी स्वीकार करते हैं कि मनुष्यों को श्रेष्ठ गुणों व आचरणों को धारण करना चाहिये। ऐसा होने पर ही श्रेष्ठ समाज व श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। आज हमारा देश, समाज व इन सबकी ईकाई परिवार आर्यत्व के गुणों से सर्वथा दूर और विदेशी आचार-विचार वाले बन गये हैं जिससे सर्वत्र अशान्ति व असमानता, अन्याय, शोषण, हिंसा, अकर्तव्यता, अवैदिक परम्पराओं का चलन आदि देखने में आ रहा है। अतः हमें वेदाज्ञा **‘कृण्वन्तो विश्वमार्यम्’** को मानकर अपने हित व कल्याण के लिए आर्यत्व को धारण करना चाहिये और दूसरों को भी यथाशक्ति आर्य बनाना चाहिये।

वेदों की उपर्युक्त आज्ञाओं का परिचय संसार में महर्षि दयानन्द सरस्वती (1825-1883) ने देशवासियों को धर्म प्रचार करते हुए कराया था। महर्षि दयानन्द ने 14 वर्ष की आयु में शिवरात्रि का व्रत करने व उसी दिन रात्रि को अपने कस्बे टंकारा के एक शिवालय में परम्परानुसार जागरण करते समय मन्दिर के अन्दर चूहों को शिवलिंग पर क्रीडा करते देखा था। उन्होंने देखा कि वह चूहे वहां शिव की मूर्ति पर भक्तों द्वारा अर्पित प्रसाद का भक्षण कर रहे हैं। यह दृश्य देखकर उन्हें मूर्ति के शिव नामी ईश्वर की शक्तियों से युक्त प्रतिमा होने में शंका व भ्रम उत्पन्न हो गया था। उनके पिता श्री करषनजी तिवारी बालक दयानन्द के शिवलिंग प्रतिमा के ईश्वरीय शक्तियों से सम्पन्न होने संबंधी प्रश्नों का समाधान नहीं कर सके। देव मूर्ति ईश्वरीय शक्ति से सर्वथा रहित है, यह बोध ही उनके बाद के जीवन में सच्चे ईश्वर व शिव को प्राप्त कराने में मुख्य प्रेरणा व कारण बना। इस दिव्य प्रेरणा व बोध से न केवल स्वामी दयानन्द मुमुक्षु व ईश्वर के साक्षात्कर्ता बने अपितु उन्होंने सारे संसार को ईश्वर के साक्षात्कार व मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग बताते हुए उसकी प्राप्ति के साधनों से भी परिचित कराया। महर्षि दयानन्द अपने समय के वेदों के मर्मज्ञ व पारदर्शी विद्वान थे। यह दक्षता उन्होंने देश का व्यापक भ्रमण कर, सभी विद्वानों के सम्पर्क में जाकर उनसे शंका समाधान व विद्या प्राप्त करने सहित कठोर पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त की थी। शायद ही उन्होंने अपने समय के किसी विद्वान व योगी से सम्पर्क न किया हो अर्थात् उन्हें जिस जिस धर्मवेत्ता विद्वान व योगी का पता मिलता था, वह उस विद्वान व योगी के पास पहुंच जाते थे और उससे जो भी ज्ञान प्राप्त कर सकते थे, प्राप्त करते थे। इसके लिए उन्होंने उत्तराखण्ड की पहाड़ियों, कन्दराओं, वनों व बर्फीली नदियों को बिना नाव आदि पार कर विद्वानों की खोज की थी और उनसे सम्पर्क स्थापित कर उनसे प्राप्तव्य ज्ञान प्राप्त किया। इस पर भी उनकी ज्ञान पिपासा शान्त नहीं हुई थी। अपने एक संन्यासी गुरु स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी की प्रेरणा से आप सन् 1860 में (35 वर्ष की आयु में) मथुरा के स्वामी विरजानन्द सरस्वती के समीप पहुंचे थे और उनसे लगभग 3 वर्ष अध्ययन कर व्याकरण सहित वेद विषयक यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया था।

गुरु जी की प्रेरणा से ही वह देश से अविद्या दूर करने के लिए वेदों के प्रचार व प्रसार के कार्य में प्रवृत्त हुए थे। मथुरा में सन् 1863 में विद्या प्राप्त कर लेने के बाद भी आप योग साधना, शास्त्रादि के अध्ययन व उनके चिन्तन-मनन में लगे रहे जिससे उनका ज्ञान विस्तार को प्राप्त होता रहा। अपनी इस जिज्ञासा व ज्ञान पिपासा की प्रवृत्ति के कारण वह अपने समय के समस्त वैदिक वांग्मय के सर्वोच्च विद्वान बने। न केवल वेद व वैदिक साहित्य के ही आप विद्वान थे अपितु आपको बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम व अन्य सभी भारतीय मतों, मजहब व पन्थों का भी तलस्पर्शी ज्ञान था। यही कारण था कि उन्होंने वेदों, इतर अन्य सभी सत्य शास्त्रों व मत-मतान्तरों के ग्रन्थों का अध्ययन कर अपने समस्त ज्ञान को सत्यार्थप्रकाश नाम के अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ को लिखने का महर्षि दयानन्द का प्रयोजन यह था कि सभी मतों के अनुयायी सत्य मत को जानकर असत्य मत का त्याग कर सत्य मत को ग्रहण कर सकें। उनके प्रचार से बहुत से सत्य के जिज्ञासुओं ने वैदिक मत को स्वीकार भी किया। उनकी मृत्यु के बाद अन्य मतों के अनुयायियों का सत्य वैदिक मत को ग्रहण करने का क्रम जारी रहा। आज भी यह क्रम जारी है और बहुत से लोग आर्य विद्वानों के उपदेश सुनकर व सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों को पढ़कर अपने अपने अविद्यायुक्त मतों को छोड़कर वेद मत को स्वीकार कर आर्यसमाज को ग्रहण करते रहते हैं।

महर्षि दयानन्द मनुर्भव एवं कृण्वन्तो विश्मार्यम् की वेद की आज्ञा का सर्वाश में पालन करने वाले आदर्श महापुरुष थे। जब हम उनके जीवन पर मनुर्भव के प्रभाव का अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि वह संसार के मनुष्यों में निराले मनुष्य थे। वह कभी असत्य भाषण नहीं करते थे। वह परोपकारी व देश के सच्चे हितैषी थे। वह निर्भीक व साहसी थे। अद्वितीय ईश्वर, वेद और देश, इन तीनों के भक्त थे। वह घंटों समाधि लगाने वाले सिद्ध योगी थे। स्वामी दयानन्द वेद भक्त ही नही थे अपितु वेदों के उद्धारक भी वही थे। महाभारत के बाद के पांच हजार वर्षों में उनके समान वेदों का उद्धारक व मर्मज्ञ विद्वान अन्य दूसरा मनुष्य नहीं हुआ। आज वेदों की चर्चा देश व विश्व में होती है जिसका श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को है तो वह केवल और केवल ऋषि दयानन्द जी को ही है। सृष्टि के आरम्भ से किसी ऋषि व विद्वान ने वेदों का किसी लोकभाषा में यथार्थ व्याख्यान व भाष्य नहीं किया था। महाभारत के बाद तो किसी ने वेदों का सत्यार्थ किया ही नहीं है। यदि किया है तो कहीं कुछ थोड़ा सत्यार्थ और यज्ञपरक अर्थ ही किये हैं जिसमें मिथ्या अर्थों का प्रचुर मिश्रण है। सामान्य पाठक से लेकर विद्वान भी उन भाष्यों को पढ़कर सत्य को प्राप्त न होकर वेदों के मिथ्यार्थ ही ग्रहण करते हैं। महर्षि दयानन्द ने लोकभाषा वा आर्यभाषा **‘‘हिन्दी”** में वेदों के सरल, सुबोध, ग्राह्य, उपादेय व त्रिविध प्रक्रिया से आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक व याज्ञिक सभी प्रकार के प्रसंगानुसार अर्थ किये हैं। उन्होंने वेदों को प्रचारित किया और लुप्त होने से बचाया है। उन्होंने देश की सब समस्याओं व पतन का कारण अज्ञान व उससे उत्पन्न अन्धविश्वासों व कुरीतियों को को बताया। उन्होंने अज्ञान व अन्धविश्वासों का खण्डन कर सत्य ज्ञान वेद पर आधारिक सत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों का मण्डन किया और उनका देश देशान्तर में प्रचार भी किया। महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व लोग ईश्वर की सच्ची स्तुति, प्रार्थना व उपासना को भूल चुके थे जिसका प्रभावशाली प्रचार उन्होंने लेखन, प्रवचन व उपदेश आदि के द्वारा किया। स्वामी जी ने सामान्य व्यक्तियों को भी सन्ध्या व यज्ञ आदि का क्रियात्मक रूप से प्रशिक्षण देकर ज्ञान कराया।

मूर्तिपूजा ईश्वर की पूजा व प्राप्ति का मार्ग न ईश्वर द्वारा वेदों में किए गए उपदेशों के विरुद्ध है, इसका उन्होंने प्रचार किया। स्वामी जी ने मूर्तिपूजा विषयक अनेक विद्वानों का शंका समाधान किया और सन् 1869 में काशी के दिग्गज पण्डितों से शास्त्रार्थ कर इसे निर्मूल सिद्ध किया। मूर्तिपूजा के बाद देश के पतन का मुख्य कारण वह अवतारवाद, फलित ज्योतिष और सामाजिक असमानता व जन्मना जातिवाद आदि को मानते थे। स्त्री व शूद्रों को वेदों के अध्ययन का अधिकार न होने को भी वह वेद विरुद्ध मानते थे। उन्होंने वेद में निहित विधान से ही स्त्री, शूद्रों व अन्त्यजों सहित मानवमात्र को वेदाध्ययन का अधिकार दिया। अवतारवाद तथा फलित ज्योतिष का उन्होंने तर्क व अकाट्य युक्तियों से सप्रमाण खण्डन किया। स्वामी जी ने जन्मना जातिवाद को वेदों के ज्ञान के विपरीत कुरीति व कुप्रथा बया व सिद्ध भी किया। उन्होंने देशवासियों को उस वैदिक प्रमाण से भी परिचित कराया जिसमें कहा गया है कि जन्म से ब्राह्मण सहित सभी चार वर्णों की सन्तानें शूद्र ही होती हैं और संस्कारों के अनुरूप ही उनका ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य वर्ण आचार्यों व राज्य व्यवस्था से निर्धारित होता है। उनकी शिक्षा व उपदेश के अनुसार आर्यसमाज के विद्वानों वा नेताओं ने गुरुकुल खोले जहां शूद्र वर्ण सहित सभी वर्णों के बच्चे एक साथ पढ़े और प्रायः सभी वैदिक विद्वान बने। इनमें से कोई अध्यापन के क्षेत्र में गया, तो कोई पत्रकारिता में, किसी ने शास्त्राध्ययन व वेद प्रचार में जीवन व्यतीत किया तो किसी ने उद्योग व व्यापार में सफलता प्राप्त की। अनेक आयुर्वेदाचार्य व चिकित्सक भी बने और इस क्षेत्र में नाम कमाया। स्वामी जी के कुछ अनुयायियों ने डीएवी स्कूल खोलकर उनका संचालन किया जिससे देश में अविद्या में कमी आई। महर्षि दयानन्द के काल में संस्कृत मरणासन्न व समाप्त प्राय हो रही थी। आज उनके व उनके अनुयायियों के प्रयासों से सहस्रों संस्कृत के विद्वान देश में विद्यमान है। फलित ज्योतिष का भी महर्षि दयानन्द ने तीव्र खण्डन किया और इसे भी व्यक्ति, समाज व देश के पतन का कारण बताया। यदि देश में मूर्तिपूजा और फलित ज्योतिष का प्रचलन न होता तो उनके अनुसार गुजरात के सोमनाथ मन्दिर पर मुस्लिम आक्रमण व आर्य हिन्दुओं की पराजय न होती। स्वामी जी के अनुयायियों ने प्रचुर मात्रा में हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी व उर्दू आदि भाषाओं में वैदिक साहित्य का निर्माण कर उनका देश देशान्तर में प्रचार किया। महर्षि दयानन्द की एक सच्चे मनुष्य से की जाने वाली अपेक्षाओं के और अनेकानेक उदहारण दिये जा सकते हैं परन्तु लेख की सीमा के कारण हम इन्हीं कथनों व उदाहरणों से सन्तोष कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द जी न केवल एक् आदर्श मनुष्य थे अपितु विश्व को श्रेष्ठ गुणों व आचरणों वाला बनाने के लिए भी वह मन, वचन व कर्म से प्रयत्नशील थे। इसके लिए उन्होंने जहां देश के अनेक भागों में जा जाकर वेदों की सत्य व मानव कल्याणकारी मान्यताओं का प्रचार, शंका समाधान व शास्त्रार्थ आदि किये वहीं स्थाई प्रचार की दृष्टि से वेदों के भाष्य सहित सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। उनके मौखिक उपदेशों व शास्त्रार्थ आदि से तो प्रचार हुआ ही, इसके साथ उनके सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों से **‘कृण्वन्तों विश्मार्यम’** का जो प्रभावशाली प्रचार हुआ व हो रहा है, उसके व्यापक स्वरूप के कारण उसका सही अनुमान लगाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। हम स्वयं भी सत्यार्थप्रकाश आदि ऋषि ग्रन्थों व आर्य विद्वानों के प्रवचन सुनकर ही पौराणिक व सनातनी धर्मावलम्बी पथिक से आर्यमतानुयायी बने हैं। इसका श्रेय महर्षि दयानन्द, आर्यसमाज के विद्वानों सहित स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों को है। हमारी तरह लाखों व करोड़ों विश्व के लोग उनके विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। इन्हें अप्रत्यक्ष व आंशिक आर्यसमाजी भी कह सकते हैं। महर्षि दयानन्द की विचारधारा व उनके द्वारा प्रचारित वैदिक सिद्धान्तों का प्रभाव न केवल भारत अपितु समस्त विश्व पर पड़ा है। इस दृष्टि से हम सारे विश्व को आंशिक रूप से आर्यसमाज से प्रभावित अनुभव करते हैं। अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। इस प्रकार से महर्षि दयानन्द ने कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का सफल प्रचार प्रसार किया और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज व उनके अनुयायी कृण्वन्तों विश्वमार्यम कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं। जिस प्रकार से विज्ञान हमें प्रचार के नाना प्रकार के साधन उपलब्ध करा रहा है, हम अनुभव करते हैं कि आने वाले समय में वेदों के सिद्धान्त विज्ञान के मुख्य साधन तर्क, युक्ति एवं परीक्षणों पर सत्य सिद्ध होने के कारण आगामी कुछ दशाब्दियों बाद समस्त विश्व द्वारा अपना लिये जायेंगे। संसार में आज भी आर्यसमाज ही एकमात्र ऐसी धार्मिक संस्था है जिसके सभी सिद्धान्त व मान्यतायें तर्क व युक्तियों पर आधारित होने के साथ बुद्धि संगत एवं सत्य पर आधारित है। सत्य अपराजेय होता है और आर्यसमाज की सभी मान्यतायें एवं सिद्धान्त सत्य होने के कारण यही विश्व का भावी सर्वसम्मत धर्म है।

हमने ऋषि दयानन्द जी के जीवन, गुणों, सिद्धान्तों व कार्यों का संक्षेप में उल्लेख किया है। वह सच्चे मानव होने के साथ मानवता के प्रचारक थे। हम स्वामी दयानन्द जी को मनुर्भव और कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की वेदाज्ञा का साक्षात् और आदर्श रूप पाते हैं और वह निःसन्देह हैं भी। इन्हीं पंक्तियों के साथ लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**